आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 2/जून 2026

Received: 20/05/2026; Revised: 22/05/2026; Accepted: 15/06/2026; Published: 28/06/2026

सुशीला टाकभौरे के नाटकों में शिक्षा, संघर्ष और सामाजिक चेतना

(रंग और व्यंग्य एवं जीवन के रंग)

[1]मेघा

शोधार्थी

श्री शंकारचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,भिलाई

[2]डॉ. सरिता रावत

शोध-निर्देशक,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

[1]मेघा, [2]डॉ. सरिता रावत, सुशीला टाकभौरे के नाटकों में शिक्षा, संघर्ष और सामाजिक चेतना, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 2/जून 2026**, (205 -211)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.21441662

अनुरूपी लेखक : [1] **मेघा,** पी.एच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग , श्री शंकारचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,भिलाई

सह लेखक [2] **डॉ. सरिता रावत,** शोध निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग , श्री शंकारचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,भिलाई

हिंदी साहित्य का हिंदी दलित वह माध्यम है जिसने सदियों से हाशिये पर रहकर समाज की पीड़ा, विद्रोह और अस्मिता को स्वर दिया है। इस विधान में सुशीला टाकभौरे का योगदान मील का पत्थर माना जाता है। उनका नाट्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि वे सामाजिक ढाँचे पर प्रहार करते हैं जो जाति और लिंग के आधार पर मनुष्य को विभाजित करते हैं। सुशीला टाकभौरे के नाटकों में जातिवाद की जड़ें,ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेशों में गरीबी, बेरोजगारी और भेदभाव का सजीव चित्रण है साथ ही

दलित स्त्री की स्थिति का चित्रण, जो एक तरफ जाति समाज से और दूसरी तरफ पुरुष प्रधान व्यवस्था से लड़ रही है। सुशीला श्रम की कीमत और मूल्य निर्धारण की व्यवस्था के ज़रिये आर्थिक शोषण की बात भी रखती हैं।

सुशीला के नाटक केवल 'रुदन' या 'बेचारगी' के नाटक नहीं हैं, बल्कि वे प्रतिरोध के नाटक हैं। उनके पात्र अपनी नियति को स्वीकार नहीं करते, बल्कि वे अपने संवैधानिक अधिकारों की मांग करते हैं। सिद्धांतों से प्रेरित होकर परिवर्तन की मशाल जलाते हैं।

सुशीला ताकभौरे के नाटक इसी दलित चेतना और सामाजिक यथार्थ के सशक्त उदाहरण हैं। उनके नाटकों में दलित वर्ग के जीवन-संघर्ष, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण और मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। वे अपने पात्रों और घटनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त अन्याय, भेदभाव और असमानता को उजागर करती हैं। साथ ही, उनके नाटकों में स्त्री-विमर्श का भी गहरा समावेश मिलता है, जहाँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण-जाति और लिंग दोनों के आधार पर को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। सुशीला के लेखन में दलित जीवन की वेदना भी हैं और व्यक्तित्व का साहस भी शामिल है।

- **सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित जीवन का संघर्ष**

सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित जीवन का संघर्ष केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक जलता हुआ अनुभव है। उनके नाटक 'सहानुभूति' के बजाय 'स्वानुभूति' (आत्म-अनुभव) की उपज हैं, इसलिए वे अंदर तक झकझोर देते हैं। 'नंगा सत्य' नाटक में वे समाज के लोग पाखंड को दिखाती हैं जहां उच्च जाति के लोग शोषण करते हैं, लेकिन सार्वजनिक रूप से भलमनसाहत का दिखावा करते हैं। 'रंग और व्यंग्य' नाटक में छब्बो अपने लिए 'अछूता' परोसवाने की बात कहती है। जिस पर पटेलजी अपना आपा खो बैठते हैं। पटेलजी के अनुसार उनके घर की जूठन जानवरों के लिए नहीं बल्कि छब्बो और उसके परिवार के लिए है। पटेल के यह कहने पर-"हिन्दू महाजनों की जूठन बहुत पवित्र होये है। नसीब वालों को बड़े नसीब से मिले है। ये जानवरों के लिए नहीं है, समझ गई...?"[1] छब्बो यह सुनकर गामा पहलवान, लंगड़े और पटेल किसी से नहीं डरती और जूठन से भरे टोकरे को उनके सामने पटक देती है। छब्बो का यह कहना कि- "औकात ...? मेरी औकात समझायेंगे मोहे..? देखूं तो जरा ...पूरे गाँव की गंदगी लाकर इनके घर में डालूंगी।"[2] उसकी निडरता और साहस को दिखाती है। वह अकेली है लेकिन अपनी शक्ति को जानती है इसलिए कठिन परिस्थिति में भी हिम्मत से काम लेती है। छब्बो की माँ छउवा अपने गाँव में मंदिर बनवाने के लिए विरोधों का सामना करती है। अपने जीवन की जमापूंजी से मंदिर बनवाने के लिए उसे बहुत सी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन वह 'जमादारन का मंदिर' कहलाता है। अपनी नानी द्वारा मंदिर बनाए जाने से शालू बहुत खुश होती है उसे लगता है कि इससे उसकी नानी की प्रसिद्धि होगी पर छब्बो अपनी बेटी को समझाते हुए कहती है कि "इससे ज्यादा यह अच्छा होता ...इन्ही रुपयों से वह अपने जात-समाज की भलाई करती। माँ-बाप की गरीबी के कारण, जो बच्चे नहीं पढ़ रहे हैं, उनके पढने का इंतजाम करती, बेरोजगार के रोजगार के लिए कोई काम धंधा शुरु करवा देती, तो लोग उसका नाम लेते, उसका एहसान

मानते।"[3] यह छब्बो के प्रगतिशील, यथार्थवादी और सामाजिक चेतना से व्यक्तित्व को उजागर करती हैं। छब्बो के अनुसार समाज में ऐसे कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जो सीधे तौर पर मनुष्य के जीवन को बेहतर बनाते हों।

इस नाटक के माध्यम से लेखिका यह संदेश देना चाहती हैं कि धर्म के नाम पर बाहरी आडंबर और प्रतिष्ठा प्राप्त करने की अपेक्षा समाज के गरीब, वंचित और जरूरतमंद लोगों की सहायता करना अधिक श्रेष्ठ कार्य है। छब्बो कहती है कि यदि उन्हीं पैसों से गरीब बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाती, बेरोजगार युवाओं को रोजगार दिलाने के साधन उपलब्ध कराए जाते, तो वह कार्य सचमुच समाजोपयोगी होता। इससे लोगों का जीवन बदलता और वे सच्चे मन से उस व्यक्ति का सम्मान करते।

यहाँ लेखिका ने सामाजिक यथार्थ को सामने रखा है कि समाज में अनेक लोग दान और धर्म के नाम पर मंदिर, धर्मशाला या स्मारक बनवाकर प्रसिद्धि चाहते हैं, जबकि वास्तविक समस्याएँ—गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी—ज्यों की त्यों बनी रहती है। छब्बो हर स्तर अपने आस-पास लोगों को जाग्रत करने का प्रयास करती है। अपनी भाभी तारा को भी समझाती है कि अपमान को बर्दाश्त न करे, लोग बुरा व्यवहार करें तो उन्हें उनकी भाषा में समझाए। अपनी माँ के इस साहस से प्रभावित होकर शालू कहती है -मां, मुझे भी ऐसी शक्ति दो, मैं भी तुम्हारी तरह हिम्मतवाली बनूँ। मैं भी तुम्हारी तरह निडर और ताकतवर बनूँ।"[4] इस प्रकार नाटक 'रंग और व्यंग्य' की नायिका छब्बो एक जागरूक, साहसी, कर्मशील और प्रेरणादायी स्त्री पात्र के रूप में सामने आती है। वह केवल अपने लिए नहीं जीती, बल्कि अपने कार्यों और विचारों से परिवार तथा समाज दोनों को दिशा देने का प्रयास करती है। छब्बो का व्यक्तित्व संघर्षशील नारी चेतना का प्रतीक है, जो अन्याय, शोषण और रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस रखती है। छब्बो की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने आचरण से दूसरों को प्रेरित करती है। वह अपनी माता को सामाजिक कार्यों के लिए जागरूक करती है और अपनी बेटी, भाभी को भी आत्मसम्मान, शिक्षा तथा स्वतंत्र सोच का मार्ग दिखाती है। इससे स्पष्ट होता है कि वह नई पीढ़ी को सशक्त और जागरूक बनाना चाहती है। वह मानती है कि स्त्री केवल घर तक सीमित रहने वाली नहीं, बल्कि समाज परिवर्तन की वाहक भी है।

- **शिक्षा और अस्मिता की लड़ाई**

सुशीला के नाटकों के पात्र छब्बो और छउवा बेबसी का शिकार होने के बजाय शिक्षा को अपना हथियार बनाते हैं। संघर्ष यहां केवल रोटी के लिए नहीं, बल्कि 'मानवीय गरिमा' और 'पहचान' (पहचान) के लिए है। सुशीला के पात्र अब पुरानी रीति-रिवाजों और दासता को त्याग कर अपने संवैधानिक अधिकारों की मांग करते हैं। इसी प्रकार सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित 'जीवन के रंग' नाटक सामाजिक यथार्थ, अंधविश्वास और जागरूकता का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करता है। इस नाटक की मुख्य पात्र गीता एक निर्धन और पीड़ित स्त्री है, जो अपनी गरीबी, अभावग्रस्त जीवन और मानसिक तनाव से इतनी व्यथित हो जाती है कि

अपने तीनों बच्चों विनोद, प्रकाश और रश्मि के साथ कठोर व्यवहार करने लगती है। परिस्थितियों से टूटकर वह बच्चों को मारने का प्रयास भी करती है।

किन्तु अज्ञानवश उसकी योजना सफल नहीं हो पाती। वह जिस कफ सिरप में ज़हर मिलाकर बच्चों को देती है, वह असर नहीं करता, क्योंकि उस बोतल में उसके पति रामेश्वर ने अपनी शराब छिपाकर रखी होती है। साथ ही, जिसे गीता ज़हर समझकर उपयोग करती है, वह वास्तव में ब्राउन शुगर निकलता है। इस प्रकार बच्चे मृत्यु से बच जाते हैं और पुनः स्वस्थ होकर लौट आते हैं।

इसी बीच घर में एक भिक्षुक भिक्षा मांगने आता है, जो गीता की दुर्दशा देखकर कथा करवाने की सलाह देता है। गीता की पड़ोसन सीता भी उसे समझाती है कि पूजा-पाठ कराने से उसके कष्ट दूर हो सकते हैं। इस नाटक के द्वारा सुशीला ने समाज में व्याप्त उस मानसिकता को उजागर किया है, जिसमें हर समस्या का समाधान धार्मिक कर्मकांडों और आडंबरों में खोजा जाता है।

जबकि जीवन की समस्याओं का समाधान अंधविश्वास, पूजा-पाठ या बाहरी आडंबरों में नहीं, बल्कि शिक्षा, ज्ञान, विवेक और जागरूकता में निहित है। मनुष्य यदि पढ़-लिखकर अपने भीतर समझ विकसित करे, तभी उसका और समाज का वास्तविक कल्याण संभव है। 'जीवन के रंग' केवल एक पारिवारिक कथा नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना से ओतप्रोत नाटक है, जिसमें सुशीला ताकभौरे ने अज्ञान और अंधश्रद्धा पर प्रहार करते हुए ज्ञान, तर्क और शिक्षा का महत्त्व स्थापित किया है।

प्रस्तुत संवाद में नाटक की मुख्य पात्र गीता और उसकी पड़ोसन सीता के माध्यम से जीवन-दर्शन और सामाजिक यथार्थ को व्यक्त किया गया है। अपने पात्रों के द्वारा सुशीला अपने मन की बात कह देती हैं सीता, गीता को सिलाई करते देखकर उसकी मेहनत, सहनशीलता और कर्तव्यनिष्ठा की प्रशंसा करती है। सीता उसे देखकर कहती है-"सचमुच दीदी तुम बहुत मेहनत करती हो तुम तो साक्षात देवी हो। कितना कष्ट सहती हो किसी से शिकायत भी नहीं करती हो बस अपने कर्तव्य पूरे करती हो, सबको सुख पहुँचाती हो, सचमुच दीदी तुम जैसे लोग ही मरने के बाद स्वर्ग जाते हैं। इस पर गीता कहती हैं मरने के बाद स्वर्ग किसने देखा है बहन ये सब झूठी दिलासा देने वाली बातें हैं। हमारा स्वर्ग नरक सब इसी दुनिया में रहता है कोई कष्ट भोगता है तो कोई सुख भोगता है।"[5] वह गीता को "साक्षात देवी" कहती है, क्योंकि भारतीय समाज में त्याग करने वाली, कष्ट सहने वाली और परिवार के लिए समर्पित स्त्री को देवी का रूप माना जाता है। सीता का यह कथन उस पारंपरिक मानसिकता को दर्शाता है जिसमें स्त्री के श्रम, त्याग और सहनशीलता को आदर्श बनाकर उसकी पीड़ा को महिमामंडित कर दिया जाता है। वह कहती है कि ऐसे लोग मरने के बाद स्वर्ग जाते हैं, अर्थात वर्तमान दुःखों का पुरस्कार भविष्य में मिलेगा।

किन्तु गीता का उत्तर अत्यंत यथार्थवादी और क्रांतिकारी है। वह कहती है— "मरने के बाद स्वर्ग किसने देखा है बहन, ये सब झूठी दिलासा देने वाली बातें हैं।"[6] इस कथन में लेखिका ने अंधविश्वास, रूढ़ धार्मिक धारणाओं और झूठी सांत्वना का विरोध किया है। गीता मानती है कि मनुष्य का वास्तविक स्वर्ग और नरक इसी संसार में है। यदि जीवन में सम्मान, सुख, शिक्षा और अवसर मिले तो वही स्वर्ग है, और यदि गरीबी,

अपमान, शोषण तथा दुःख मिले तो वही नरक है। गीता का यह दृष्टिकोण उसे एक जागरूक, व्यावहारिक और विचारशील स्त्री सिद्ध करता है। वह भाग्यवाद में विश्वास नहीं करती, बल्कि जीवन की वास्तविक समस्याओं को समझती है। यह संवाद बताता है कि केवल भविष्य के स्वर्ग की आशा देकर गरीब और पीड़ित लोगों को बहलाया जाता है, जबकि उन्हें वर्तमान जीवन में अधिकार, सम्मान और सुख मिलना चाहिए। गीता का चरित्र संघर्षशील स्त्री का प्रतीक है, जो जीवन के कठोर सत्य को पहचानती है और व्यावहारिक सोच रखती है। गीता एक जागरूक, संवेदनशील, व्यावहारिक तथा प्रगतिशील नारी के रूप में चित्रित हुई है। गीता उसे कहती है- "मेरी बात मान लो सीता, किसी अच्छे डॉक्टर से इलाज करवाओ। इलाज से फायदा ना हो तो किसी अनाथालय से, बच्चा दत्तक ले लो। उससे ही अपना बच्चा समझकर पालो, इसी में सुख-संतोष मिलेगा। पागलों की तरह पूजा पाठ करने में कुछ नहीं होगा, यह तो भ्रमजाल है, हम खुद ही उसमें उलझे रहते हैं।"[7] अपनी पड़ोसन सीता को संतान न होने की समस्या पर जो सलाह देती है, उससे अनेक महत्वपूर्ण बातें उजागर होती हैं।

सबसे पहले, गीता का व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण सामने आता है। वह सीता से कहती है कि किसी अच्छे डॉक्टर से इलाज करवाओ। इससे स्पष्ट होता है कि गीता अंधविश्वास या टोने-टोटकों में विश्वास नहीं करती, बल्कि आधुनिक चिकित्सा और तर्कसंगत उपायों को महत्व देती है। वह समस्याओं का समाधान विज्ञान और चिकित्सा में खोजती है।

दूसरे, गीता का मानवीय और उदार दृष्टिकोण भी प्रकट होता है। वह कहती है कि यदि इलाज से लाभ न हो तो किसी अनाथालय से बच्चा दत्तक ले लो और उसे अपना बच्चा समझकर पालो। यह विचार उसकी करुणा, ममता और सामाजिक उत्तरदायित्व को दर्शाता है। वह केवल सीता के दुख का समाधान नहीं बताती, बल्कि अनाथ बच्चों को परिवार देने की प्रेरणा भी देती है। वह सीता की पीड़ा को समझती है और उसे सच्ची सलाह देकर उसके जीवन में सुख-संतोष लाने का प्रयास करती है। गीता एक विवेकशील, आधुनिक, संवेदनशील और समाज-सुधारक नारी के रूप में सामने आती है। वह नाटक की नायिका होने के साथ-साथ नई चेतना और स्त्री जागरण की प्रतीक भी है।

सामाजिक चेतना

सुशीला के नाटकों का अंत अक्सर केवल दुःख पर नहीं होता, बल्कि एक **'विद्रोह'** या **'संकल्प'** पर होता है। उनके पात्र अब अपमान सहने के बजाय पलटकर सवाल पूछना चाहते हैं। यह 'प्रतिरोध का स्वर' ही सुशीला टाकभौरे के साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है।

सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित जीवन का संघर्ष एक बहुसंख्यक लड़ाई है। यह संघर्ष असहमत से शुरू होकर अस्मिता पाने तक जाता है। उनके नाटक में यह संदेश दिया गया है कि जब तक समाज में जाति ऊंची-नीच रहेगी, तब तक मानवता का विकास अधूरा है। कई बार लेखक-लेखिका, नाटककार अपने पात्रों

के माध्यम से आप बीती कहते हैं और इस नाटक को अर्थात जीवन के रंग को पढ़ते वक्त मुझे ऐसा ही लगा इस नाटक की नायिका गीता है और उसका बेटा प्रकाश जो नाटक लिख रहा है, उसके नाटक का शीर्षक है समाज को बदल डालो यह सुनकर उसके पड़ोसी सीता कहती है- "अरे ये कैसा नाटक का नाम है नाटक होते हैं जैसे राजा हरिशचंद्र, भक्त ध्रुव, सत्यवान सावित्री, परशुराम का धनुष, नाटक महापुरुषों और भगवान पर लिखे जाते हैं और नाटक लिखना सबके बस की बात नहीं होती, नाटक तो बड़े-बड़े पंडित संस्कृत के विद्वान लिखते हैं तुझे क्या आता है कल का छोकरा चल चला है नाटक लिखने के लिए।"[8] इस पर प्रकाश कहता है –"आंटी अब वह जमाना गया जब नाटक राजा महाराजाओं, भावपुरुषों और भगवान पर लिखे जाते थे अब नाटकों में जनसाधारण लोगों के जीवन की समस्याओं पर विचार होता है अब भगवान नहीं इंसान पर नाटक लिखे जाते हैं।"[9] सीता और प्रकाश के संवाद के माध्यम से पुरानी तथा नई सामाजिक चेतना के संघर्ष को चित्रित किया है। यह संवाद केवल दो पात्रों की बातचीत नहीं, बल्कि बदलते साहित्यिक दृष्टिकोण और सामाजिक सोच का प्रतीक है।

सीता का कथन परंपरागत मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। साथ ही वह यह भी कहती है कि नाटक लिखना केवल बड़े पंडितों और संस्कृत विद्वानों का कार्य है। इससे समाज में व्याप्त वर्गभेद, ज्ञान पर एकाधिकार तथा सामान्य लोगों की उपेक्षा का भाव स्पष्ट होता है।

इसके विपरीत प्रकाश का उत्तर आधुनिक सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। वह कहता है कि अब वह समय बीत चुका है जब साहित्य केवल राजाओं, देवताओं या महापुरुषों तक सीमित था। अब नाटक आम जनजीवन की समस्याओं, संघर्षों और यथार्थ पर आधारित होते हैं। यह कथन आधुनिक यथार्थवादी साहित्य की मूल भावना को व्यक्त करता है, जिसमें किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, बेरोजगार और शोषित वर्ग के जीवन को केंद्र में रखा जाता है। अब साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन या धार्मिक आदर्श प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं को सामने लाना और परिवर्तन की चेतना जगाना है। समाज में नई पीढ़ी पुरानी रूढ़ियों को चुनौती दे रही है। शिक्षा और जागरूकता के कारण साहित्य लोकतांत्रिक हुआ है, जहाँ हर व्यक्ति की पीड़ा और अनुभव को अभिव्यक्ति मिल रही है। सुशीला टाकभौरे ने परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व, साहित्य में जनसाधारण की उपस्थिति तथा सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी टाकभौरे के नाटक अत्यंत प्रभावशाली हैं। उनकी भाषा सरल, सहज, संवादप्रधान तथा पात्रानुकूल है, जिसके कारण उनके नाटक सामान्य पाठकों और दर्शकों से सीधा संवाद स्थापित करते हैं। वे लोकजीवन से जुड़े शब्दों और बोलचाल की भाषा का प्रयोग करती हैं, जिससे नाटकों में यथार्थ और स्वाभाविकता का प्रभाव उत्पन्न होता है।

अतः डॉ. सुशीला टाकभौरे के नाटक शिक्षा, संघर्ष और सामाजिक चेतना के सशक्त वाहक हैं। उनके नाटकों में दलित समाज, स्त्री-अस्मिता और सामाजिक समानता के प्रश्नों को अत्यंत गंभीरता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। वे अपने नाटकों के माध्यम से समाज को जागरूक करने, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष

की प्रेरणा देने तथा समतामूलक समाज की स्थापना का संदेश देती हैं। इस दृष्टि से उनका नाट्य-साहित्य हिंदी दलित साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ

1. टाकभौरे, सुशीला, नाट्यरंग (मुंबई: प्रलेक प्रकाशन), "रंग और व्यंग्य," 33
2. वही पृष्ठ 33
3. वही पृष्ठ 45
4. वही पृष्ठ 57
5. टाकभौरे, सुशीला, नाट्यरंग (मुंबई: प्रलेक प्रकाशन), "जीवन के रंग," 82
6. वही पृष्ठ 82
7. वही पृष्ठ 84
8. वही पृष्ठ 87
9. वही पृष्ठ 88

****